गुरु नानक
और उनका पंथ

गुरवचनसिंह तालिब

1970

नेशनल पब्लिशिंग हाउस

दिल्ली

गुरु नानक फाउंडेशन पंच जन्म-शताब्दी स्मृति-ग्रन्थ

गुरु नानक
जीवनी, युग एवं शिक्षाएं

आमुख
डॉ० जाकिर हुसैन
भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति

भूमिका
डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन
भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति

प्रधान सम्पादक
गुरमुख निहालसिंह

गुरु नानक फाउंडेशन, नई दिल्ली
के लिए

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
द्वारा प्रकाशित

गुरु नानक फाउंडेशन के तत्त्वावधान में संकलित एवं प्रचारित

आवरण : नारायण
प्रथम संस्करण, १९७०
मूल्य :
पुस्तकालय संस्करण : दस रुपये
पेपरबैक : चार रुपये

प्रकाशक :
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
२/३५, अन्सारी रोड, दरियागंज, दिल्ली-६

मुद्रक : रायसीना प्रिंटरी, दिल्ली-६

: ५ :

गुरु नानक और उनका पंथ

गुरवचनसिंह तालिब

मूल मानवतावाद

गुरु नानक के उपदेशों से जो पंथ या मत का आविर्भाव होता है और जो उनके अनुयायियों अर्थात् सिखों के जीवन्त विश्वास का अंग है उसके निरूपण के लिए यह आवश्यक होगा कि हम उन सभी लेखकों के विचार अपने मन से निकाल दें जिन्होंने सिख धर्म के सतही अध्ययन के बल पर यह धारणा चला रखी है कि सिख धर्म वास्तव में हिन्दू धर्म तथा इस्लाम का सम्मिश्रण अथवा संश्लेषण है। इस प्रकार के विचार या तो यूरोपीय लोग सिख धर्म सम्बन्धी विचार-विमर्श में प्रकट करते हैं या वे भारतीय जिनका अध्ययन सूत्र मुख्यतः पश्चिमी होता है, न कि सिखों के पवित्र धर्म ग्रंथ **गुरु वाणी** में निहित मूल उपदेश। गुरु नानक उस पंथ का प्रचार कर रहे थे जिसका जन्म और विकास देश की मिट्टी में हुआ, जो मानो चिरन्तन सत्य की दैविक झाँकी के रूप में भारतीय मानस के सामने प्रकट हुआ। इसके समस्त अनिवार्य आधारतत्व तथा विश्वास ऐसे हैं जो सामान्य रूप से उस औसत हिन्दू को मालूम होंगे जिसका विकास अपनी आध्यात्मिक परम्परा को थोड़ा-बहुत समझते हुए हुआ होगा; तथा जिसने अपने ही लोगों के वातावरण से अपने आध्यात्मिक, आत्मिक तथा नैतिक विचारों को प्राप्त किया होगा, न कि आधुनिक शिक्षा से प्राप्त युक्तिपरक (rationalised) धारणाओं से जो विभिन्न स्तरीय बुद्धि वाले लोगों में यथानुसार बंटी रहती हैं। इस कथन का यह अर्थ नहीं कि गुरु नानक का आत्मिक अभियान भारत की प्राचीन आध्यात्मिकता को जागरित करने का प्रयास-भर था। इस प्रकार का विचार केवल भ्रम ही पैदा करेगा, क्योंकि भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन के दीर्घ इतिहास में दर्शन सम्बन्धी धारणाओं और व्यवहारों की अत्यधिक विविधता दीखती है। गुरु नानक ने यह किया कि मोती चुने और भारतीय उदधि में हिलोरें लेती हुई मतों तथा उपमतों की लहरों को छोड़ दिया; भ्रम, संघर्ष तथा अंधविश्वासों के अंधकार में डूबे हुए विशाल भारतीय समाज को दिशा देने के लिए उन्होंने अनन्त तथा परम की प्राप्ति की मानव इच्छा के विशुद्ध तत्त्व को वाणी दी। आत्मिक प्रेरणा के तत्त्व तथा चिरन्तन की तलाश को वाणी देने के साथ ही उन्होंने कड़े शब्दों में उन सब-

कुछ की निन्दा की जो समय के साथ-साथ मूल तत्त्व को दबा बैठे थे, तथा इसे ऐसी धारणाओं तथा संस्थागत रीतियों से घेर बैठे थे जिनका कोई नैतिक अथवा आत्मिक औचित्य न था। उन्होंने जाति व्यवस्था के अन्यायों और अमानवीयता की निंदा की, क्योंकि इसके कारण मानव समुदाय के बहुत से भागों में इन्सान को क्षुद्र मानना और उसका अपमान करना दैविक अधिकार माना जाता था; इसके अलावा, जाति व्यवस्था के अंतर्गत मात्र जन्म के कारण ही एक वर्ग दूसरे वर्ग से अधिक पवित्र तथा श्रेष्ठ मान लिया जाता था। पुजारियों, वैरागियों, ओझाओं तथा पवित्रता का दावा करने वाले और बहुत तरह के लोगों के नक़ली रवैये तथा अज्ञानतापूर्ण विचारों का उन्होंने खंडन किया और कहा कि धार्मिक जीवन वह है जो नैतिक जीवन में केन्द्रित होता है, जो मानवता और सच्चे जीवन का आदर करे तथा उचित सामाजिक व्यवस्था को बढ़ावा दे। यह सब-कुछ उन्होंने भारतीय लोगों की परिचित शब्दावली में व्यक्त किया, अर्थात् धर्म जिसके विभिन्न अंग हैं—दया, सच-आचार, संतोष, क्षमा, शील। सच्चा धार्मिक जीवन इन्हीं गुणों तथा इनसे सम्बद्ध गुणों को अपनाने में है, औपचारिक अथवा संस्थागत नियम या रस्म बरतने में नहीं, जो उन दिनों सारे भारत में प्रचलित थे, तथा जो अपने-आप में धार्मिक जीवन का मूल रूप या सार समझे जाते थे। गुरु नानक का संदेश नया भी था, पुराना भी। सार रूप में यह आध्यात्मिकता के उस सर्वोच्च बिंदु का पुनरोत्कर्ष है जो भारतीय मानस की ओर से मानव संस्कृति को एक उदात् दान है; पर साथ ही यह प्रकाश के एक महान् पुंज-सा उस अंधकार में फूटा जिसने गुप्तकालीन शानदार उपलब्धियों के बाद आए हुए ह्रासकाल से, सहस्राब्दि से भी अधिक काल तक भारत को ढंक रखा था। भारत में आने वाले किसी भी उपदेशक की अपेक्षा गुरु नानक के शब्दों में ही जीवन का सम्पूर्ण तथा विस्तृत जीवनदर्शन, दो हज़ार वर्षों की अवधि के बाद, मिलता है, क्योंकि तब गीता में भी कुछ इसी प्रकार का जीवनदर्शन मिला था, यद्यपि ईश्वरीय अवतार में विश्वास जैसी बहुत-सी धारणाएँ गीता से भी पहले की थीं। उसके अंतर्गत भी धर्म तथा कर्तव्य के मिश्रण का व्यापक दर्शन है। एक का दूसरे में विलयन, अलगाव नहीं, जैसा कि भारत की एकपक्षीय धार्मिक विचारधारा के लम्बे इतिहास में हुआ, जिसका सबसे अंधकारपूर्ण युग मुस्लिम शासन की स्थापना के बाद की सदियों में आया।

भारत की प्राचीन आध्यात्मिकता तथा औचित्य सम्बन्धी इसके विशिष्ट रूप के पुनरोत्थान के साथ-साथ, गुरु नानक ने भारत के बहुत से भागों में ज़माने से स्थापित मुस्लिम शासन (उनके अपने समय में भी) की उपस्थिति से पैदा हुई समस्याओं का न केवल समाधान निकालना चाहा, बल्कि भारतीय लोगों के बड़े-बड़े समूहों में धर्म परिवर्तन द्वारा इस्लाम के विकास को

भी रोकने की कोशिश की; यद्यपि इस प्रकार के मुसलमान भारतीय भूमि के लोगों के ही वंशज थे, किन्तु धर्म-परिवर्तन के बाद हिन्दू धर्म की सारी मान्यताओं और पवित्र धारणाओं के प्रबल तथा सक्रिय विरोधी बन गये थे। गुरु ने देखा कि इस प्रकार के मुसलमान साधारण क़िस्म के लोग थे—ग़रीब मज़दूर जिन्हें जितना हिन्दू समाज सताता था उतना ही ज़मींदार तथा शोषक पुजारी-वर्ग भी। इस्लाम और मुसलमानों को समाप्त नहीं किया जा सकता था, और हिन्दू समाज, जो कि मतों तथा सामाजिक और राजनीतिक खंडों में विभक्त था, पुनर्विजय के लिये इस्लाम से युद्ध भी नहीं ठान सकता था। इस कठिन स्थिति में, जो कुछ रूप में आज भी मौजूद है, गुरु नानक ने एक द्विराही प्रक्रिया की कल्पना की। हिन्दू को अपने वृहत् समाज में उगे तथा विकसित सभी असत्यों से छुटकारा पाकर पवित्र बनना होगा। उसे अपनी जाति द्वारा मूल रूप से कल्पित ईश्वर की तथा मानव जीवन की सर्वोत्कृष्ट कल्पना को फिर से प्राप्त करना होगा, जो बाद में आने वाली आदिमता, जीववादिता, प्रतीक पूजा तथा आध्यात्मिक जीवन के स्थान पर रीति-रस्मों के कारण कलुषप्राय हो गयी थी। इसके अतिरिक्त, हिन्दू को अपने उस झूठे जीवन-दर्शन का भी त्याग करना होगा जिसके अनुसार सर्वोच्च गुण कठोर तपस्या तथा त्याग से ही प्राप्त होता है तथा विस्तृत रूप में नैतिक तथा सामाजिक कर्तव्यों की पूर्ति भी होती है। केवल तभी हिन्दू अपनी अतिजीविता के लिए शक्ति और क्षमता प्राप्त कर सकता है; तथा अपने उस नैतिक पतन को रोक सकता है, जिसका मार्मिक वर्णन गुरु ने कई स्थलों पर अपनी रचनाओं में किया है। साथ ही, मुसलमानों के साथ हिन्दुओं को मानवीयता तथा औचित्य के उन सर्वव्यापी आदर्शों की तलाश करनी होगी जो सभी सच्चे धर्मों की जड़ में होते हैं, चाहे इन धर्मों का बाहरी रूप कुछ भी हो। संघर्ष, घृणा तथा असहयोग का रास्ता नहीं, बल्कि हिन्दू-मुसलमानों, दोनों द्वारा ईश्वरपरायणता की ओर एक सम्मिलित प्रयास। इसी सत्य की खोज में गुरु ने हिन्दू-धर्म के विभिन्न रूपों के तीर्थों की विशद् भारत यात्रा तो की ही, साथ ही भारतीय मुसलमानों में कई अत्यन्त ज्ञानवान् उपदेशकों से भी सम्पर्क किया; तथा भारत के बाहर भी इस्लामी संसार के महान् चिन्तकों तक अपना मानववादी आदर्श पहुँचाने के महान् प्रयास में उन्होंने मुस्लिम धार्मिक विचार के प्रधान केन्द्रों मक्का और बग़दाद की यात्रा की। इतनी सच्चाई से वे इस प्रकार के अवबोध तथा भाई-चारे की मांग करते कि अक्सर उन्हें लोग मुसलमान समझ लेते, तथा मुसलमान जनता तथा उनके पवित्र नेताओं के आदर का पात्र उसी तरह बन जाते जैसे हिन्दू जनता तथा हिन्दू नेताओं के।[1]

---

१. गुरु के प्राचीनतम जीवन आख्यान के अनुसार, दैविक संदेश की प्राप्ति के बाद जो प्रथम

यह उनका रचनात्मक दर्शन था—एक ऐसा आदर्श जो आज के अर्थबोध में राष्ट्रीय था, जो लोगों तथा धार्मिक नेताओं की अंधानुकरण के विरुद्ध था। हिन्दुओं के पतन पर यदि उन्होंने अपना दुःख तथा रोष प्रकट किया तो साथ ही हिन्दू तथा मुसलमान, अर्थात् सामान्य भारतीय जनता के दुःखों पर भी अपनी हृदय-वेदना को वाणी दी, उदाहरणार्थ १५२१ में बाबर द्वारा पंजाब में किये गए नृशंस अत्याचार और क़त्लेआम पर उन्होंने दुखानुभूतिपूर्ण रचनायें लिखीं। आध्यात्मिक धरातल पर गुरु ने मुसलमानों (आदर्शवादी तथा मानवतावादी हिन्दुओं के साथ भी) के प्रचारकों के साथ मानवीयता तथा सर्वव्यापी सत्यों के बीच उभयनिष्ठ समानता की तलाश की, जिससे कि वे सत्य, भारतीय मानव समुदायों के लिए एक सच्चे धर्मसूत्र के रूप में काम आ सकें। इसी 'दर्शन' को गुरु गद्दी के उनके एक अधिकारी गुरु अर्जुन ने अत्यन्त वास्तविक अर्थों में रूप दिया। उन्होंने सिखों के धर्म ग्रन्थ, 'ग्रन्थ साहब' में विभिन्न धर्मों के कई संतों की ऐसी रचनाओं को शामिल किया जिनमें आत्मा की पुकार तथा नैतिक सत्य का पुट है। इस महान् प्रयास का उद्देश्य था मेल-जोल, समझ-बूझ, भाईचारे तथा राष्ट्रीय एकता की प्राप्ति। फिर भी यह कहना ग़लत होगा कि गुरु अथवा उनके उत्तराधिकारियों ने इस्लाम तथा हिंदू धर्म के संश्लेषण की चेष्टा की थी। अपने सर्वोत्तम तथा सर्वोच्च आध्यात्मिक संस्कारों के आधार पर हिन्दुओं को अपने आत्मिक तथा नैतिक जीवन को ढालना था, (अंतरंग, आत्मिक तथा सामाजिक अर्थों में सिखों के लिये भी यही निर्देश थे); तथा इसके बल पर मुसलमानों के प्रति सहनशीलता और मित्रता की भावना विकसित करनी थी। मुसलमानों को भी, अच्छे मुसलमान होने के नाते, हिन्दुओं के प्रति वैसी ही भावना अपनानी होती। दरअसल, गुरु के अनुसार अच्छा हिन्दू या मुसलमान होना मत या धर्म-सम्बन्धी रूढ़ियों पर नहीं, बल्कि धर्मानुगत सत्य तथा उत्तमता के सिद्धान्तों के पालन पर निर्भर है। संसार ने पैग़म्बरों तथा प्रचारकों को सुना तथा उनके उपदेशों पर विभिन्न प्रतिक्रियायें दिखायी हैं। गुरु नानक के 'शब्द' ने सारे भारत में जन समूह तथा धार्मिक उपदेशकों के बीच एक लहर पैदा कर दी। वृहत् जनसमुदायों के विचारों और आचरणों पर अब तक इसकी भावना का प्रभाव है; यद्यपि अभी भी हिन्दू धर्म तथा इस्लाम, दोनों में भारतीय रूढ़ियों के नाम पर बहुत कुछ ऐसा है जो व्यर्थ है, पर प्रभावपूर्ण है। किन्तु यह एक भिन्न प्रसंग है, और इस समय विचाराधीन भी नहीं।

शब्द उनके मुंह से उच्चरित हुए वे थे : "न कोई हिन्दू है, न कोई मुसलमान।" स्पष्टतः इसका अर्थ यह था कि हिन्दू-मुसलमान को अलग करने वाले रीति-रस्म गलत हैं; तथा सच्चा धर्म इसकी अपनी मानवीयता तथा आदर्श ही है।

गुरु के 'शबद' का एक मुख्य चरित्र है नैतिक तथा आत्मिक विचारों को व्यक्त करने वाले मूल फ़ारसी और अरबी के शब्दों का बहुधा प्रयोग; उदाहरणार्थ करीम, रहीम, क़ादिर, कुदरत, साहिब, नदर (नज़र), करम, फ़रमान, रब, दरगाह, बहिश्त, पाक, दरवेश, जमात, सालिक, सादिक़, ख़ुदा, क़ाबू, ख़सम, पीर, मुरीद, मेहर, इत्यादि-इत्यादि। इस प्रकार के शब्दों के इस्तेमाल से यह ज़रूरी नहीं कि हम गुरु नानक की सीख पर इस्लाम का प्रभाव मान लें। जैसा पहले कहा जा चुका है और बाद में फिर उल्लिखित भी किया जाएगा, उनकी धार्मिक शिक्षा मूल रूप से भारतीय आध्यात्मिक 'दर्शन' के अनुकूल है। गुरु ने अक्सर सहिष्णुतापूर्ण उपदेशों तथा मेल-जोल की भावना की पुष्टि के लिये आत्मिक तथा नैतिक विचारों की अभिव्यक्ति युगल शब्दों में की है; एक का मूल भारतीय तो दूसरे का अरबी अथवा फ़ारसी होता। इस प्रकार, **कर्ता** (कर्तार) **क़ादिर** और **करीम** के साथ आता है, अर्थात् शक्तिवान् तथा दयावान्। इसी तरह **सिद्ध** (योगी) और **पीर**, साथ आने वाले शब्द हैं। दूसरे शब्द फ़ारसी और अरबी स्रोतों से अनन्य रूप में अपनाये गए, जैसे **हुकम** (दैविक आदेश) तथा मेहर (प्रसाद गुण) क्योंकि भारत में तीन सौ साल के मुसलमानी शासन के बाद ये जन साधारण को अधिक समय में आते। जहां कहीं भी ये शब्द आए हैं, इनका उद्देश्य सामान्य मानवीय आदर्शों को व्यक्त करना रहा है, **न कि इस्लामी धर्म के किसी उपदेश को प्रचारित करना**। मुसलमानों को कहा गया कि वे अपने धार्मिक अनुष्ठानों से पीछे इन्हीं सामान्य आदर्शों की खोज करें। जहां तक आत्मिक जीवन की योजना का प्रश्न है, जिस पर हम इस लेख के दूसरे भाग में विचार कर रहे हैं, वह भारत में सदियों से विकसित हुए सत्यों पर आधारित है, यद्यपि गुरु ने इन सत्यों में भी वैसे ही संशोधन किये जो उनके विचार में जनता के नैतिक जीवन को सबसे अधिक उपयोगी बना सकें। इस्लाम या इस मत का कोई भी अंश गुरु की सीख में नहीं आता। गुरु ने इसके मूल सिद्धान्तों का अध्ययन इसके व्यापक तथा मानवीय अर्थबोध के लिये किया। गुरु ने हिंदुओं को भी अपने धर्म में इसी प्रकार के अर्थ खोजने को कहा, किन्तु गुरु ने इसके सार को क़ायम रखा और इन्हें अभिव्यक्ति दी। अतः यह कहा जा सकता है कि उन्होंने ऐसी भारतीय आदर्शवादिता की भावना का प्रचार किया जो मानवीय तथा नैतिक अर्थों में मुसलमानों के साथ मेल-जोल से रहने की राह तैयार करे। मुसलमानों को भी गुरु ने यही राह दिखायी।

(२)

गुरु-पंथ के प्रधान बिन्दु

जैसा पहले कहा जा चुका है, गुरु के उपदेशों से, जो उनके 'शबदों' तथा

दर्शन चिन्तन सम्बन्धी कविताओं में प्रकट होते हैं, जिस पंथ का आविर्भाव हुआ, वह उन अभिधारणाओं के तालमेल में था जिनका विकास भारतीय मानस ने सदियों से किया। इस संदर्भ में यह याद रखना होगा कि गुरु के विचार चुनावपरक थे; तथा जटिल भारतीय धार्मिक संस्कारों में से बहुत कुछ उन्होंने अस्वीकार किया है, तो साथ ही उन्होंने उसे भी अभिव्यक्ति दी है जो इन संस्कारों में सर्वोत्तम तथा सर्वोच्च है। जो व्यक्ति भारतीय धार्मिक विचारधारा तथा इसे व्यक्त करने वाली शब्दावलियों से परिचित हैं उसके लिये गुरु के संदेश किसी प्रकार भी अपरिचित नहीं लगेंगे। इसका कारण यह है कि अपनी चिन्तन रचनाओं में अधिकतर वे हिन्दुओं को ही सम्बोधित कर रहे थे जिन्होंने झूठी विकास प्रक्रिया के कारण धर्म के असली रूप आदर्शवादिता तथा नैतिकता को खो दिया था, तथा धर्म के स्थान पर झूठे दिखावे को स्थान दे बैठे थे। जैसा पहले कह चुके हैं, मुसलमानों को सम्बोधित करते समय वे उन्हें धर्म के व्यापक तथा मानवीय अर्थ को समझने को प्रेरित करते। तभी तो मुस्लिम आस्था के प्रतीक, जैसे मस्जिद, इबादत का क़ालीन, रमज़ान का रोज़ा इत्यादि को उन्होंने नैतिक तथा आध्यात्मिक महत्त्व दिया जिनके बिना ये सारे प्रतीक व्यर्थ हो जाते हैं।[1]

इसी भांति हिन्दुओं को भी उन्होंने उनके धर्म के नैतिक तथा आत्मिक अर्थों को ढूंढने को कहा। जनेऊ का अर्थ नैतिक संयम तथा सत्यपरायणता है; '**अढ़सठ तीर्थों**' का सच्चा स्नान तो ईश्वर चिन्तन में डूब जाना है, जिसके बिना इस प्रकार के स्नान मात्र दिखावटी रस्म रह जाते हैं। ईश्वर के बारे में वह कहते हैं, "तेरी स्तुति ही तो असली गंगा और काशी है।" उनके उपदेशों का सार **जपजी** में संग्रहीत है, जहां एक स्थल पर वह कहते हैं, "ईश्वर की वाणी का श्रवण ही अढ़सठ तीर्थों में स्नान के बराबर है।" इसी तरह उन्होंने उत्तर भारत में लोकप्रिय तथा गोरखनाथ द्वारा चलाये गये योग पंथ के रूप को भी आत्मिक तथा नैतिक आयाम प्रदान किया।

गुरु पंथ के प्रतिज्ञापन '**मूल-मंत्र**' में ईश्वर का नाम '**एक-ओंकार**' के रूप में आया है जो भारतीय आत्मिक परम्परा के '**ओम्**' अथवा '**ओंकार**' से ही आया है। '**एक**' का उपसर्ग ईश्वरीय सत्ता की सम्पूर्ण तथा अविभाज्य प्रकृति पर बल देना है जिसके गुण अथवा विशेषण हैं, '**सत नाम, कर्त्ता-पुरुष,**[2] **निर्भय,**

---

१. उनके प्रारम्भिक जीवन की एक घटना के अनुसार उन्होंने एक मुस्लिम प्रार्थना-सभा में भाग लेने से इन्कार किया क्योंकि वहां हर आदमी ईश्वर चिन्तन के स्थान पर दुनियावी चिन्तन में फंसा हुआ था।

२. पुरुष ओम् के बराबर है तथा ऋग्वेद से ही भारतीय संस्कृति को प्राप्त हुआ है।

निर्वैर, अकालमूर्ति, अजूनी, (अजन्मा) **सैभंग'** (स्वयंभू) गुरु रचित '**दक्खिनी ओंकार**' जो सम्पूर्णतया दर्शन तथा चिन्तन प्रधान है, '**ओंकार**' अर्थात् परम की हर्षपूर्ण स्तुति पर आधारित है।

गुरु की शिक्षा में भारतीय विचारधारा की एक और अभिधारणा बड़ी खूबी से सम्मिलित हुई है, और, वास्तव में, साधक जिसकी प्राप्ति की दिशा में आगे बढ़ता है; वह है **अद्वैत** अथवा परम सत्य की द्वैतहीनता। इसका अर्थ हुआ कि परम को छोड़ बाकी सब कुछ अयथार्थ है, तथा घटनाओं की उपस्थिति **माया** है। गुरु के संदेशों में **अद्वैत** शब्द तो नहीं आता, किन्तु इससे सम्बद्ध धारणायें तो सर्वत्र विद्यमान हैं, जैसे **माया** तथा इसके अनेक पर्याय; तथा सांसारिकता में मनुष्य के डूबे रहने को **दुविधा** या **दूजा-भाव**, अथवा **दुर्मति** कहा गया, अर्थात् जो परम में दृढ़ विश्वास के विपरीतार्थक शब्द थे। आध्यात्मिक जीवन का महान्तम उद्देश्य इंद्रियों से ऊपर उठना है जिन्हें भारतीय दर्शन-शास्त्रों में तथा गुरु की शिक्षा में **तम, रज** तथा **सत्व** नाम देकर **त्रिगुण** अथवा **त्रिकुटी** कहा गया है, तथा **तुर्या** अथवा परम के दर्शन की उपलब्धि है जहां पर सारे विरोधाभास खत्म हो जाते हैं और आत्मा, परमात्मा के एक साथ एकाकार हो जाती हैं।

भारतीय दर्शन की भांति ही गुरु ने भी जीवन के प्रयास का अंत पुनर्जन्म की समाप्ति अथवा **मुक्ति** को माना है, जो सत्कार्यों के फलस्वरूप मिलती है। गुरु, शरीर परिवर्तन अथवा पुनर्जन्म को स्वयंसिद्ध मानते हैं, तथा इसके निराकरण को लक्ष्य समझते हैं। इसकी प्राप्ति कुछ तो सत्कार्यों से तथा कुछ ईश्वरीय महिमा से होती है, (जिसे फ़ारसी में **मेहर** तथा अरबी में **नादर** कहा गया है।) यद्यपि प्राचीन भारतीय शब्द **प्रसाद** को ही अधिकतर व्यवहार में लाया गया है और पवित्र ग्रन्थ का प्रायः हर पृष्ठ इस शब्द को अंकित करता है। आध्यात्मिक पथ **सुणिअई** (श्रवण), **मन्नई** (मनन) तथा **ध्यान** से होता हुआ समाधि की ओर जाता है। योगियों के **हठ** मार्ग की अपेक्षा गुरु का यह पथ **सहज** है। चरमावस्था को **महा आनन्द** अथवा **महा रस** तथा और कई नामों से जाना गया है; साथ ही निर्वाण[1] में निहित अबोधावस्था की ओर उन्मुख न हो, इस पथ पर साधक उत्तम तथा उपयोगी कर्मों की ओर अग्रसर होता है, यानी **सेवा** की ओर दत्तचित्त हो जाता है। यह सच्ची वीरता तथा त्याग का पथ है, और वीर तथा त्यागी वही है जो **जोधमहाबली सूर** है, अर्थात् परम शक्ति का नायक है। यह वही हो सकता है जो ईश्वरपरायण हो। ये सूरमा वे होते हैं जो मन की वासनाओं को भी चुनौती देते हैं, तथा बुरों को भी दंडित

---

१. गुरु ने इस शब्द का भी व्यवहार किया है।

करते हैं,—दोनों ही अर्थों में वे वीर होते हैं। गुरु ने ईश्वर को **असुर संहार** नाम से भी याद किया है, इस गुण को भारत में लोग भूल ही चुके थे अथवा याद भी करते तो केवल देवकथाओं में ही, वास्तविक जीवन से इसका कोई लगाव न था।

पुराणों के तथा ईश्वरीय अवतार के शाब्दिक निर्वचन को गुरु ने अस्वीकार किया; यद्यपि नैतिक सत्यों को सोदाहरण व्यक्त करने के लिये उन्होंने पौराणिक कथाओं का प्रयोग किया है। उनकी शिक्षा गीता के सर्वोत्तम सार—इच्छाओं के परित्याग—का समर्थन करती है, किन्तु कर्म को उच्चादर्श नहीं मानती। भारतीय परम्परा से ईश्वर के नाम लिये गये हैं, जैसे **राम, दामोदर, मधुसूदन, गोपाल, गोविन्द, निरंजन, नरहरि, मोहन, मुकन्द, दीनानाथ** इत्यादि-इत्यादि। ये सारे नाम पौराणिक तथा सगुण हैं, यद्यपि जैसा सभी संदर्भों में स्पष्ट है, इनका अर्थ एक परमात्मा ही है, विभिन्न मतों के लोकप्रिय पौराणिक देवताओं का अर्थ नहीं है। इस लेख के प्रथमांश में जैसा कहा जा चुका है, सहिष्णुता तथा भाईचारे की भावना को उत्साहित करने के लिये यदा-कदा ईश्वर के मुस्लिम नामों का भी प्रयोग किया गया है।

गुरु नानक ने जिस ईश्वर की संकल्पना की वह **निराकार-निरंकार ब्रह्म** है, फिर भी वह **सगुण**, अथवा **सरगुन** है। इन सभी में भारतीय जनमानस अपने परिचित प्रतीकों को ही पाता है, भारतीय आध्यात्मिकता तथा आदर्शवादिता का यह पुनर्जागरण ही तो है।

(३)

भक्ति तथा सूफ़ी मत

गुरु नानक तथा गुरुगद्दी पर बैठने वाले उनके उत्तराधिकारियों की ईश-रचनाओं का एक प्रमुख गुण भक्ति है। ईश्वरीय प्रेम ही भक्ति का सार है, यह वह मार्ग है जिस पर चलकर साधक अपने प्रिय को,—ईश्वर को—प्राप्त करता है। इसे सम्भव बनाने के लिए मानवीय कल्पना के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि ईश्वरीय सत्व को वह रूप देकर साकार करे, और आकर्षक गुणों से विभूषित करे और फिर उसके प्रति तीव्र प्रेम की भावना लगाये। ऊंचे स्तरों पर, भक्ति ईश्वर-प्राप्ति का एक और मार्ग है, जिसके लिए भारत में भक्ति के अलावा ज्ञान और कर्म के मार्ग भी बनाये गये हैं। गुरु नानक की रचनाओं के अत्यन्त मार्मिक भागों में इसी भक्ति का वातावरण है, और उनमें उस आत्मा की चाह भरी पुकार है जो परमात्मा से, सर्वव्यापी से बिछुड़ गयी है और मिलन की कामना कर रही है। ये प्रार्थनायें अत्यन्त काव्यमय हैं, तथा कई स्थलों पर भावनायें इतनी गहरी और वेदनायें इतनी तीव्र हैं कि भाषा

और शैली प्रणय गीतों का आभास देने लगती हैं। मिलन की यह कामना आधार रूप में अद्वैत दर्शन का ही आदर्श है जो भावात्मक तथा क़रीब-क़रीब कामात्मक अर्थों में अपने को बदल लेती हैं। आंतरिक रूप से यह रहस्यद्रष्टा की वह कामना है जो ईश्वरीय सत्ता में विरोधाभास, विभाजन तथा द्वैत को अस्वीकार करती हुई सर्वव्यापी तालमेल तथा एक ब्रह्म में विश्वास रखती है। इसकी भाषा कविता और अभिव्यक्ति संगीत है, क्योंकि यही वह एकमात्र माध्यम है जिसके द्वारा भावना को इसकी सम्पूर्णता के साथ समझा जा सकता है, और इसकी सघनता की कल्पना की जा सकती है।

भक्ति पंथ की तरह इस्लाम में भी सूफ़ी मत क़रीब नवीं शताब्दी में आध्यात्मिक भावात्मक आन्दोलन के रूप में विकसित हुआ। इसने मुख्य सौंदर्य बोधी उदार प्रवृत्तियों को व्यक्त किया, इस कारण परम्परानिष्ठ धर्मवादियों के कोप का शिकार हुआ, और बाद में इस्लामी संहिता का पूर्ण निर्वाह करते हुए सूफ़ी मत ने नम्र उदारता तथा अनुरूपी या संस्कारवादी भावुकता को ही व्यक्त किया। अपने सर्वोच्चीय विन्दु पर सूफ़ी मत भी, भक्ति अथवा अद्वैत की भांति ही, एक परमात्मा की तलाश—**वहदातुल वजूद** में बढ़ा। इसके सिद्धान्त प्रधानतया प्लेटो तथा प्लोटिनस से प्रभावित थे जिनके अनुसार प्रेय सार को प्राप्त करने की एक आत्मिक कामना का रूप लेता है, सूफ़ी मत ने भी कामना, कविता और संगीत में अपने को व्यक्त किया तथा आत्मिक सम्पूर्णता प्राप्त करने के साधन रूप में अपने को प्रस्तुत किया। मध्ययुगीन भारत में, स्वाभाविक ही, जनता के निकट सम्पर्क में आने वाले इस प्रकार के हिन्दू भक्तों तथा सूफ़ी दरवेशों की बहुधा आपसी मुलाक़ातें होती रहतीं। अल्पांश में ही, किन्तु यदा-कदा पारस्परिक प्रभाव प्रक्रिया भी जारी की। मुस्लिम दरवेशों ने, जिन्हें साधारणतया पीर कहा जाता था, ईश्वर के लिए भारतीय सम्बोधन **'साजन'** को ग्रहण किया, तथा अपने प्रार्थना गीतों में भारतीय पृष्ठभूमि से कल्पना-सृष्टि की, क्योंकि भारतीय भूमि में ही उन्हें आत्मिक अनुभूति के बिम्ब मिलते गये। किन्तु दार्शनिक रूप से भक्त तथा दरवेश अलग-अलग ही रहे, अपनी-अपनी पृष्ठभूमि से दोनों ने प्रेरणायें ग्रहण की तथा अंत में अपने अनुभवों और ज्ञान को अपने ही अलग सम्प्रदायों में वितरित किया। हिंदू भक्त भारतीय पुराणों तथा भारतीय दर्शन के सन्दर्भों में, जिनसे वे अपने ज्ञान को आच्छादित करते, बात करते थे, इधर दरवेशों के ज्ञान के पीछे इस्लामी एकेश्वरवाद तथा विश्ववादिता थी। भारतीय भक्ति का उद्भव **अलवार** कहे जाने वालों सन्तों के साथ दक्षिण में हुआ था; मुस्लिम सूफ़ी मत का प्रादुर्भाव ईरान में हुआ था। सूफ़ीमत इस्लाम के अन्तर्गत आन्दोलन था तथा सामान्य धार्मिक वातावरण को उदार बनाने में इसका योगदान बहुत थोड़ा है। इसके विपरीत भक्ति आन्दोलन का उदार उद्देश्य था जिसने जन

समूह को उसी दिशा में प्रभावित भी किया।

गुरु नानक पर, जिनकी भक्ति सगुण परमेश्वर के प्रति थी, सूफ़ी प्रभाव का कोई प्रमाण नहीं मिलता। उनका दर्शन अथवा ज्ञान सम्पूर्णतया भारतीय भक्ति तथा रहस्य परम्परा के भीतर है। वे मुस्लिम सन्त, जैसे शेख फरीद सानी तथा पीर बहाउद्दीन ज़करिया, जिनके सम्पर्क में गुरु आये थे, सूफ़ी नहीं थे। वे केवल पीर थे, लोकप्रिय मुसलमान फ़कीर जिनका जीवन पवित्र था। उन्होंने, विशेष रूप से शेख फ़रीद सानी ने, धर्म के सद्व्यवहार द्वारा प्राप्त होने वाले नैतिक लक्ष्य की ओर संकेत दिया। उनके इस नैतिक रवैये तथा द्वेषहीनता के कारण ही गुरु नानक ने उनके उदाहरण को महत्व दिया, और उनके समान सीख को जनता में प्रचारित करना चाहा। सूफ़ियों का जो-कुछ भी सिद्धान्त रहा हो, गुरु ने उस ओर नहीं के बराबर ध्यान दिया है। सूफ़ियों के प्रति भी उनकी आपत्ति वही होगी जो योगियों के प्रति थी, अर्थात् मानव समाज में नैतिक कर्त्तव्यों को न कर वीतरागी बन जाना। उन्होंने इस प्रवृत्ति का हमेशा खण्डन किया है। गुरु के भक्तिगीत भारतीय परम्परा में रचित हैं, जिसके अनुसार साधक अथवा प्रेमी, स्त्री रूप में आकर अपने वर की कामना कर रही होती है। सूफ़ी मत में मुस्लमानी परम्परागत नर प्रेमी (बहुधा समलैंगिक प्रेम की कामना) प्रचलित है। देहातों में गीत रचने वाले सूफ़ी दरवेशों ने भी नारीपात्र के रूप में प्रेमी की कल्पना को अपनाया है। किन्तु इस प्रकार का परिवर्तन विशुद्ध सूफ़ी परम्परा के अन्तर्गत नहीं आता। निश्चय ही गुरु नानक पर सूफ़ी मत के किसी भी रूप का प्रभाव नहीं था, हाँ उनकी सच्चाई और दर्शन के कारण पीर बहाउद्दीन तथा शेख फ़रीद जैसे प्रमुख तथा कई अपेक्षाकृत कम प्रसिद्ध मुसलमान फ़कीर उनकी ओर अवश्य आकृष्ट हुए थे।